उत्तर प्रदेश की दलित जातियों में राजनीतिक चेतना का विकास

डा0 सुशील पाण्डेय

1950–1990

उत्तर प्रदेश की राजनीति में 1990 के बाद दलित जातियों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो गयी। 1950 से 1990 तक दलित राजनीति कई दौर से गुजरी। दलितों को सरकारी नौकरियों और राजनीतिक संस्थाओं में आरक्षण मिला, भूमि सुधारों और कल्याणकारी कार्यक्रमों से दलित जातियाँ लाभान्वित हुईं दलित जातियों के आर्थिक उत्थान ने उन्हें राजनीतिक रूप से सशक्त बना दिया। अध्ययन अवधि में प्रदेश की राजनीति में दलितों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। सामाजिक, शैक्षिक, राजनैतिक, धार्मिक दृष्टि से जो जातियाँ पिछड़ गई है या जिन्हें अवसरों से वंचित रखा गया 'दलित जातियाँ' कहलाती है।[1] धार्मिक शब्दावली में जिन्हें अतिशूद्र चंडाल और अन्त्यज कहा गया, सामाजिक शब्दावली में उन्हें ही अछूत और कानूनी शब्दावली में उन्हे अनुसूचित जातियाँ कहा गया। 1935 के भारत सरकार के अधिनियम में सर्वप्रथम दलित जातियों को अनुसूचित जाति कहा गया।[2]

उत्तर प्रदेश की दलित जातियों में पारम्परिक रूप से राजनीति में भागीदारी और राजनैतिक जागरूकता काफी कम रही है। उपनिवेशवादी काल में प्रदेश में दक्षिण भारत और पश्चिम भारत की तरह ब्राह्मण विरोधी आंदोलन नहीं हुआ। आजादी के तुरन्त बाद दलितों के एक अभिजात वर्ग ने अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित होकर और रिपब्लिकन पार्टी के नेतृत्व में थोड़े समय के लिए दलितों को प्रेरित किया। समुदाय के एक छोटे अभिजात्य वर्ग को छोड़कर आर्थिक सुधारों का लाभ आजादी के बाद दलितों तक नहीं पहुँचा। 1980 के दशक के मध्य से जाति आधारित ध्रुवीकरण बहुजन समाज पार्टी के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ। इसकी स्थापना कांशीराम ने किया। 1993 में पहली बार बसपा ने संविद सरकार बनाया। 1995 और 1997 में बसपा ने अपनी सरकार की स्थापना करके उ0 प्र0 की राजनीति में व्यापक बदलाव कर दिया।[3]

उत्तर प्रदेश में दलित जातियों में राजनीतिक चेतना जुड़ाव और पृथकता के दौर से गुजरी हैं। जुड़ाव का अर्थ है, कांग्रेस प्रभुत्व वाले दल से जुड़ना अथवा समर्थन देना। स्वीकार करना और समझौता करना जैसे तत्व साथ–साथ इस दौर में मौजूद थे और अलग पहचान बनाने की कोशिश भी होती रही। पृथकता का अर्थ है हिन्दू जाति व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह और बौद्ध धर्म की ओर झुकाव। इस दौर में दलितों ने ब्राह्मणवादी या अभिजात्य पार्टियों के विरूद्ध अपनी पार्टी बनाने की कोशिश की।[4]

आजादी के बाद उत्तर प्रदेश में दलितों की पहचान और चुनावी राजनीति को तीन भिन्न चरणों के अन्तर्गत पहचाना जा सकता है।

1. 1956–1969 आजादी के तुरन्त बाद दलितों ने कांग्रेस से समझौता किया और रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया नाम से अपनी पार्टी बनाया।
2. 1977 तक दलितों ने कांग्रेस का समर्थन किया क्योंकि इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में गरीबी हटाओं जैसे क्रान्तिकारी उपाय अपनायें गये।
3. 1980 के प्रारम्भ से दलित आंदोलन विद्रोह की ओर गे बढ़ा पृथक पार्टी, विचारधारा और पहचान के माध्यम से। अब आन्दोलन सामाजिक की अपेक्षा राजनीतिक हो गया। आन्दोलन अब हिन्दूवाद और उसकी आलोचना से दूर हो गया।

तीन चरणों से पता चलता है कि तीसरे चरण में दलित आन्दोलन का लक्ष्य ज्यादा स्पष्ट हो गया। यद्यपि बहुजन समाज पार्टी रिपब्लिकन पार्टी आफ इन्डिया की प्रतिद्वन्दी नहीं थी फिर भी इसने अधिक उग्र और आतंकी तरीके से दलित आन्दोलन को प्रस्तुत किया। यद्यपि यह समकालीन व्यवस्था चाहे सामाजिक हो या आर्थिक को क्रान्तिकारी रूपान्तरण के जरिये नहीं बदलना चाहती थी। बहुजन समाज पार्टी ने स्वयं को राजनीतिक पार्टी और एक आन्दोलन दोनों ही रूपों में प्रस्तुत किया। इसने बहुजन समाज का प्रतिनिधित्व किया और दलित आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया। बाद में पार्टी ने उच्च जातियों की पार्टियों से गठजोड़ किया, जो पहले शत्रु घोषित थीं यह सामाजिक क्रान्ति की समाप्ति का संकेत था। महाराष्ट्र के दलित आन्दोलन की अपेक्षा यह रूढ़िवादी, अभिजात्यवर्गीय और चुनाव उन्मुख आन्दोलन है।[5]

उत्तर प्रदेश में कोई भी बड़ा जाति विरोधो आन्दोलन नहीं हुआ परिणामतः दलितों में राजनीतिक चेतना का विकास काफी देर से हुआ। इसका कारण उत्तर प्रदेश का दृढ़ और परिवर्तनीय सामाजिक ढ़ाचा था। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान ध्रुवीकरण की शुरूआत हुई। भीमराव अम्बेडकर का प्रभाव उत्तर प्रदेश में केवल कुछ क्षत्रों और छोटे अभिजात्यवर्ग तक ही सीमित था। उत्तर भारत में जाति संरचना दक्षिण और पश्चिम की अपेक्षा मौलिक रूप से पृथक है। ऐतिहासिक रूप से उत्तर भारत में ब्राह्मणवाद विरोध दक्षिण की अपेक्षा कम है। महाराष्ट्र में भागवत भक्ति विचार पर आधारित कई जाति विरोधी आन्दोलन हुये। उत्तर भारत में जाति विरोधी आन्दोलन न होने का मूल कारण जाति विरधी विचारधारा का अभाव और असमान सामाजिक, राजनीतिक ढ़ाचे की स्वीकार्यता थी। महाराष्ट्र में आर्थिक परिवर्तन ने भी इसमें महत्वपूर्ण सहयोगी की भूमिका निभाया। ब्रिटिश शासन के आगमन ने वैकल्पिक व्यवसाय की चुनौतियाँ उपलब्ध कराया। इससे शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन बढ़ा। बाम्बे प्रेसीडेन्सी आर्थिक रूप से संयुक्त प्रान्त से अधिक उन्नत था। गोदी रेलवे, सड़क, कपड़ा मिलों में रोजगार मिला और बम्बई, पूना, नागपुर जैसे नगरों में महारों को शिक्षा और अपनी सामाजिक स्थिति को सुधारने का अवसर मिला।[6] महार समाज में अम्बेडकर के आगमन से पहले ही जागरूपता आ चुकी थी जबकि संयुक्त प्रान्त में पुरानी व्यवस्था निरंतर जारी थी।

ध्रुवीकरण का प्रारूप दोनों राज्यों में अपने अपने प्रभाव की दृष्टि से अलग–अलग था। उपनिवेशवाद विरोधी आन्दोलन उत्तर प्रदेश में गाँधी के नेतृत्व में आया जबकि महाराष्ट्र में कांग्रेस ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाया जो कि अम्बेडकर से भी प्रेरित था। संयुक्त प्रान्त में किसान सभा आन्दोलन (1920–21) और सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930–31) और लगान अभियान में दलित किसानों और मजदूरों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाया और अपने नेता भी विकसित किये जैसे मदारा पासी कांग्रेस नेताओं ने गाँधी के नेतृत्व में किसानों के जन ध्रुवीकरण के राजनीतिक महत्व को समझा।[7] जब आन्दोलन ने किसान नेताओं को पैदा करने का निश्चित रूप प्राप्त कर लिया, तब सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन को एक दूसरे से जोड़ दिया गया। महारों के पास ध्रुवीकरयण का विकल्पिक रास्ता अम्बेडकर ने उपलब्ध कराया। महारों ने राजनीति का उपयोग अपनी समाजिक स्थिति सुधारने, राजनीतिक कौशल प्राप्त करने और राजनीति की मुख्य धारा में आने में किया।

1940 के दशक में दलितों के एक वर्ग ने कुछ जिलों में, जहाँ बाद में रिपब्लिकन पार्टी का उदय हुआ, गाँधीवादी विचारधारा को अस्वीकार करके अम्बेडकर की विचारधारा को स्वीकार किया और अपनी नई पहचान बनाने और राजनीति का उपयोग अपना स्तर सुधारने में किया।[8] यह परिवर्तन आगरा के चमार जूता कारीगरों में दिखता है जो आर्य समाज के प्रभाव में आकर संस्कृतिकरण का मार्ग अपना रहे थे। 1940 के दशक से एक लघु लेकिन प्रभावशाली अभिजात वर्ग उभरा जिसने शिक्षा प्राप्त किया जिले की राजनीति में प्रवेश किया और राष्ट्रीय आन्दोलन में रूचि लेने लगा। 1944 में इन लोगों आगरा दलित जाति फेडरेशन की स्थापना किया जो अम्बेडकर की अखिल भारतीय अनुसूचित जाति फेडरेशन से सम्बद्ध थी।[9] 1940 के दशक में इन नेताओं ने अनुभव किया कि सास्कृतिकरण के कारण आनुष्ठानिक रूप से निचली जातियाँ ऊपरी गतिशीलता नहीं प्राप्त कर रही है। इसके परिणामतः 1945–50 का संक्रमण काल सामने आया जिसमें बड़ा परिवर्तन हुआ और अब इनका सन्दर्भ समूह दलित वर्ग बन गया। इसे नेताओं ने जनसंख्या के दलित वर्ग के रूप में पहचाना और नये संवैधानिक ढ़ाचे में दलितों की भूमिका को शक्ति प्राप्त करने के नये अवसरके रूप में देखा। इस बदलाव ने 1966 के चुनाव में संयक्त जाटव फ्रन्ट का गठन किया।[10] जाटव कांग्रेस पार्टी के रूढ़िवादी अनुयायी और फेडरेशन के क्रान्तिकारी अनुयायी के रूप में बँट गये परिणामतः पराजित हुये। दो भागों में विभाजन, एकता और अलगाव की स्थिति आजादी के बाद में भारत में भी निरंन्तर समस्या के रूप में बनी रही। दोनों दल अम्बेडकर के प्रभाव में 1956 में आये और आगरा के जाटव और अलीगढ़ के चमार वर्ग ने अम्बेडकर के बौद्ध धर्म में प्रवेश के माडल को अपनाया। कांग्रेस से निराश होकर दोनों गुट रिपब्लिकन पार्टी आफ इन्डिया की स्थापना में सहयोगी बने।[11] उत्तर प्रदेश में केवल कुछ क्षेत्रों में ही दलितों ने राजनीतिक गतिशीलता प्राप्त किया, बाकी क्षेत्र में अधिकांश दलित अभी भी अछूते थे।

1958 में रिपब्लिकन पार्टी आफ इन्डिया की स्थापना से उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन में नया और पृथकतावादी चरण प्रारम्भ हुआ।[12] अपनी स्थापना के बाद पार्टी ने 1962 के तीसरे आम चुनाव में हिस्सा लिया। इसने 68 संसदीय और 301 विधानसभा सीटों पर चुनाव लड़ा जिसमें से उसे उत्तर प्रदेश में 3 लोक सभा सीटों और 8 विधानसभा सीटों पर विजय मिली।[13] पार्टी ने महाराष्ट्र की अपेक्षा उत्तर प्रदेश में बेहतर प्रदर्शन किया। उत्तर प्रदेश के 1967 के चुनावों में पार्टी ने 10 विधानसभा सीट और 4.1 प्रतिशत मत प्राप्त किये।[14] शीघ्र ही पार्टी

के प्रदर्शन में गिरावट आई। 1974, 1977, 1980 के चुनाव में पार्टी ने 52, 11 और 2 उम्मीदवार खड़े किये और एक भी सीट नहीं जीत सकी।[15] रिपब्लिकन पार्टी ने 1962 और 1967 के चुनाव में केवल दोआब और पठार क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन किया। यह कांग्रेस के खराब प्रदर्शन के कारण हुआ जब पार्टी ने 1962 के चुनाव में 36.33 प्रतिशत वोट प्राप्त किया जबकि पार्टी ने 1952 के चुनाव में 47.93 प्रतिशत वोट प्राप्त किया था।[16] महत्वपूर्ण तथ्य था कि 1961 के हिन्दू मुस्लिम दंगों के कारण पश्चिमी उत्तर प्रदेश के चार जिलों में में रिपब्लिकन पार्टी और मुस्लिम नेताओं के बीच चुनावी समझौता हुआ। दंगे ने दोनो को साझा मंच प्रदान किया। कांग्रेस से नाराजगी ने रिपब्लिकन पार्टीजैसी छोटी पार्टियों के कांग्रेस ने वोट में भागीदार बनाया। इस पृष्ठभूमी पर प्रारम्भ करके पार्टी जब तक अपना वोट प्रतिशत बढ़ाती या नये क्षेत्रों में फैलती, पार्टी समाप्त हो गई।

में रिपब्लिकन पार्टी का संक्षिप्त अस्तित्व और दलितों को लामबंद करने में सफलता का कारण दलित समाज और उत्तर प्रदेश के समाज और राजनीति की प्रकृति में विद्यमान है। इसके तीन महत्वपूर्ण कारण है।

1. प्रभावी नेतृत्व का अभाव।
2. नेतृत्व के बीच रणनीति पर मतभेद।
3. कांग्रेस की बृहद और प्रभावी पार्टी के रूप में योग्यता, जिससे दलित कांग्रेस से प्रभावित थे।

चमार/चाटवों ने एक छोटे शिक्षित शहरी अभिजात्य वर्ग का गठन किया, जिसने दलितों को लामबंद करने और नेतृत्व प्रदान करने का कार्य किया। यह लोग जाति सोपनाकर में नीचे के और गुटों द्वारा नापसंद किये गये और डराये भी गये। एक मजबूत नेता के अभाव में यह लोग पार्टी को एकजुट करने में विफल रहे। नेता दो मुद्दों पर विभादित थे। 1– कांग्रेस के साथ दिलतों का सम्बन्ध। 2– हिन्दू जाति समुदाय एक सम्पूर्णता के रूप में। मुद्दा एकीकरण अथवा पृथकता का था। विभिन्न जिलों का अध्ययन स्पष्ट करता है कि दो मुख्य समूह थे– कांग्रेसी रूढ़िवादी और रिपब्लिकन राजनीतिज्ञ पहला ग्रुप समृद्ध व्यापारियों का था जो सीधे राजनीतिक गतिविधि में हिस्सा नहीं लेता था, वह कांग्रेस का सदस्य इसलिये होता था क्योंकि यह उसके अस्तिस्व से जुड़ा था। सत्ताधारी पार्टी उन्हें वित्तीय स्त्रोत, संरक्षण, अनुदान, लाइसेंस देती थी। अपने दिलत प्रस्थिति और अपनी जाति के समाजिक, आर्थिक लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुये इस वर्ग ने हमेंशा कांग्रेस के साथ सहयोग किया और में रिपब्लिकन पार्टी का विरोध किया। इसके विरोध में में रिपब्लिकन पार्टी के नेताओं ने अनुभव किया कि एक पृथक पार्टी समुदाय के हितों का ज्यादा बेहतर ध्यान रख सकती है। उन्होंने अपनी राजनीतिक स्थिति का प्रयोग स्थानीय सरकार या राज्य विधानमण्डल में दलितों के आर्थिक और रानीतिक हितों को प्रस्तुत करने और जागरूकता बढ़ाने और समुदाय की विशिष्ट पहचान बनाने में किया।

1970 के दशक के दलित आन्दोलन की विवेचना दो दशकों के अलगाववादी राजनीति आन्दोलन में फूट और एकीकरण के रूप में की जी सकती है। 1969 के विधानसभा चुनाव में में रिपब्लिकन पार्टी और दलित आन्दोन ने अपनी विशिष्ट पहचान खो दिया और लम्बे दैर के पतन की ओर अग्रसर हो गई। इस चरण में दलित आन्दोलन ऊँची जातियों के समीप पहुँचा और कांग्रेस से सहयोग किया। 1960 के दशक में मध्यम जातियों ने अपने नेताओं की प्रेरणा से और हरित क्रान्ति से प्राप्त समृद्धि से राजनीति के नये दौर में प्रवेश किया। इस जातियों ने भारतीय क्रान्ति दल (बी0के0डी0) जैसी पार्टी के रूप में राजनीति में प्रवेश किया। इसके परिणामतः परे प्रदेश में जाति संघर्ष मुख्यतः निम्न जातियों और नई उभर रही उग्र मध्यम जातियों के बीच शुरू हो गया।[17] 1960 के दशक के अन्त में कांग्रेस पार्टी के नेताओं ने पार्टी के लिये एक नया सामाजिक आधार बनाने का प्रयास किया। पार्टी ने गरीबों, भूमिहीनों, दलितों और अल्पसंख्यकों को पार्टी से जोड़ना शुरू किया, इसका कारण धनी कृषक जातियों और मध्यम जातियों द्वारा समर्थित कृषक दलों/समूहों को चुनौती का जवाब देना था।[18]

पार्टी ने इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में अपनी एक क्रान्तिकारी छवि बनाया, जब पार्टी ने जनवादी राजनीति की शुरूआत गरीबी हटाओ और 20 सूत्री कार्यक्रमों के माध्यम से शुरू किया।[19] पहले के अपने मत आधार में आ रही गिरावट को रोकनो हेतु आवश्यक था कि पार्टी छोटे किसानों, भूमिहीन मजदूरों को जिसमें से ज्यादातर दलित थे, सीधे प्रभावित करे। इसका प्रभाव 1971 के लोकसभा चुनाव घोषणा पत्र में दिखा। इसमें कहा गया कि हरित क्रान्ति ने केवल उच्च वर्गीय किसानों को फायदा पहुँचाया है। वायदा किया गया कि पार्टी इस लाभ को सही तरीके से, सभी तक और देश भर में विस्तृत करेगी। विशेषतः छोटे, सीमांत किसानों, को लाभ दिया जायेगा। अतिरिक्त भूमि का पुनः वितरण, बैंकों का राष्ट्रीकरण ने पार्टी को छोटे किसानों, बेरोजगारों, भूमिहीनों के पक्ष में कार्य करने के योग्य बनाया।[20]

1980 के दशक में दलित आन्दोलन ने उत्तर प्रदेश में एक नये दौर में प्रवेश किया, जब बहुजन समाज पार्टी ने नेतृत्व में दलितों का सम्पूर्णता में मुख्यधार की

पार्टीयों और उच्च जाति के हिन्दु समुदाय से अलगाव शुरू हुआ। इसकी उदय और स्थापना एक महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति के रूप में, दो अन्तः सम्बन्धित विकास से सम्बन्धित हैं। पहला उत्तर प्रदेश में कांग्रेस व्यवस्था का तेजी से पतन। 1970 के दशक में शक्ति का केन्द्रीकरण और इन्दिरा गाँधी द्वारा केन्द्रीय हस्तक्षेप बढ़ाने से क्षेत्रीय नेतृत्व की छित पहुँची, प्रबल गुटबाजी बढ़ी और पार्टी का समाजिक आधार और पार्टी की मशीनरी दोनों का विखण्डन हुआ। अभी भी पार्टी पर उच्च जाति के नेताओं का प्रभाव था, पार्टी दलित, पिछड़े नेता पैदा करने में असफल रही अतः पार्टी ऐसे समाज में संकुचित होने लगी जहाँ जाति समूह महत्वपूर्ण होने लगे थे। इसने राज्य में एक राजनीतिक शून्य पैदा कर दिया। ऐसी पार्टीयों के लिये स्थान खाली हो गया, जो लामबंद सामाजिक समूहों का नेतृत्व कर रहीं थी।

इसके समानान्तर 1980 के दशक में दलित समुदाय की स्थिति में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। दलितों की स्थिति में सुधार हो रहा था यद्यपि यह राज्य के कुछ हिस्सों में सीमित था, परिवर्तन की गति धीमी थी और गरीबी अभी भी बनी हुई थी। हरित क्रान्ति ने कृषि में निवेश बढ़ाया जबकि नगरीकरण से फार्मों में, ईंट भट्ठों में, निर्माण क्षेत्र में और रिक्शा चलाने के क्षेत्र में रोजगार बढ़े।[21] इसके परिणामतः भूस्वामियों पर पूर्ण निर्भरता और जजमानी व्यवस्था का पतन होने लगा। उपेक्षा से त्रस्त होकर दलितोंने मरे जानवरों को ढ़ोना बन्द कर दिया और संस्कृतिकरण का मार्ग अपनाया जो उनके द्वारा पहने जाने वाले पवित्र धागे और मांस, मदिरा के त्याग में दिखने लगा। इस परिवर्तन के कारण शिक्षा और चुनावी प्रक्रिया का विस्तार भी था जबकि सरकार के कल्याणकारी उपाय विशेषतः पिछड़े इलाकों में नकारात्मक प्रभाव छोड़ रहे थे। एक छोटा शहरी अभिजात्य समूह भी उभराष प्रारम्भिक रूप से चमारों में। आजादी के बाद के वर्षों में इस समूह ने सबसे पहले शिक्षा प्राप्त किया, आरक्षण का लाभ उठाया और सफेदपोश मध्यम वर्ग और छोटे उद्यमियों का रूप धारण किया। कुछ ने अपने परम्परागत जूते के व्यवसाय में समृद्धि प्राप्त किया। आज चमार/कुरूल, जाटव सरकार की प्रथम श्रेणी में नौकरियों में हैं। इन परिवर्तनों ने दलित समुदाय में एक छोटा शिक्षित वर्ग तैयार किया। यही वर्ग 1980 व 1990 के दशक में दलित आन्दोलन का अग्रदूत बना।[22]

बहुजन समाज पार्टी(बसपा) की प्रकृति, संगठन, लक्ष्य और विचारधारा तुलनात्मक रूप से तीन सन्दर्भों में समझी जा सकती है।[23]

1. रिपब्लिकन पार्टी जिसने पार्टी के लिये आधार तैयार किया विशेषतः दलितआन्दोलन का विकास करके।
2. देश के विभिन्न हिस्सों में दलितआन्दोलन, जिससे पार्टी की समानता भी थी और ठोस मतभेद भी।
3. कांग्रेस पार्टी से इसका सम्बन्ध, क्योंकि इसने कांग्रेस की दलित उद्धार नीतियों के विरूद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त किया और अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में सफल रही।

बसपा की जड़े, इसकी प्रकृति, विचारधारा अन्य दलित आन्दोलनों, पार्टीयों से अलग है। 1960 के दशक में गरीबी, आर्थिक पिछड़ापन, दलितों पर उच्च जातियों द्वारा अत्याचार ने विभिन्न अतिवादी संगठनों को जन्म दिया। 1978 में कांशीराम ने एक छोटा सा सरकारी कर्मचारियों का संगठन बामसेफ नाम से प्रारम्भ किया।[24] यह जाति भेदभाव से बचाने के लिए दलितों का अखिल भारतीय संगठन था। जिसमें सरकारी कर्मचारी शामिल थे। इससे प्रतिबद्ध और शिक्षित कार्यकर्ताओं के साथ–साथ धन का स्त्रोत भी मिला जो कार्यकर्ताओं के चंदे से इकट्ठा होता था। उनकी अपनी परिभाषा में बामसेफ एक विचार केन्द्र था, एक मेधा बैंक था, एक वित्तीय बैंक था जिसके माध्यम से दलित, शोषित समाज अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य दलित और शोषित समाज को मुख्य धारा में लाना और उनकी पहचान बनाना था। कांशीराम की रणनीति बामसेफ को बाद में एक राजनीतिक दल के रूप में विकसित करने की थी। आन्दोलन की अपील 1982 में मुखरित हुई जब एक आन्दोलनकारी शाखा के रूप में दलित शोषित समाज संघर्ष समिति की स्थापना हुई।[25] इसे डी0 एस0 फोर कहा गया। ग्रामीण क्षेत्रों मैं इसकी व्यापक पहुँच बनी। समाजिक संघर्ष आन्दोलन की राजनीतिक अभिव्यक्ति के रूप में 1984 में बहुजन समाज पार्टी गठन हुआ।[26] अन्य दलित संगठनों से बसपा भिन्न थी, यह सुनियोजित पार्टी थी न कि प्रतिक्रियावादी और यह कई बड़े दलित आन्दोलनों सो होकर पैदा हुई थी। यद्यपि पार्टी एक सामाजिक क्रिया समूह के रूप में उभरी, लेकिन यह कोई धार्मिक या सुधार आन्दोलन नहीं था। यह निश्चित रूप से एक राजनीतिक संगठन था, जिसका उद्देश्य शक्ति प्राप्त करना और उसका प्रयोग दलित हित के लिये करना था।

बसपा का नेतृत्व और समर्थन आधार रिपब्लिकन पार्टी से अलग था। 1960 व 1970 के दशक में दलित नेता केवल रानीतिक सत्ता में भागीदारी और वर्तमान

समाजिक व्यवस्था में सुधार से संतुष्ट थे। इसके उल्टे बसपा नेता वाह्य रूप से उग्रपंथी दिखते थे और स्वयं को अनुसूचित जाति या हरिजन के स्थान पर दलित गरीब शोषित कहना पसंद करते थे। उन्होंने नई पहचान पर जोर दिया और जाति व्यवस्था के प्रति असमझौतावादी दृष्टिकोण अपनाया।[27] इन्होंने जाति को अस्वीकार किया और सत्ता पाकर परिवर्तन करने ने विश्वास किया। इनका मुख्य प्रचार ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध करनाऔर जातिव्यवस्था का विरोध करना था, क्योकि यह असमानता को बढ़ाता है, सामाजिकदृढ़ता को बढ़ाता है, जाति पर आधारित व्यवसाय को अपनाने पर बाध्य करता है और कमजोर वर्गों का शोषण करता है। 1980 के मध्य तक बसपा का सामाजिकआधारश संकीर्ण था, पार्टी शिक्षित और सरकारी कर्मचारियो के समर्थन पर आधारितथी।[28]1990 तक पार्टी का आधार समुदाय के गरीब तबके तक फैल गया, जिसनेइसकी उग्रता में बढ़ोत्तरी किया ओर जाति संघर्ष को बढ़ावा दिया।

रिपब्लिकन पार्टी के विपरीत बसपा नेतृत्व ने 1990 के प्रारम्भ में पिछड़े, दलित, आदिवासी, धार्मिक, अल्पसंख्यक सभी को साझे मंच पर लाने कीकोशिश शुरू कर दिया, इन्हें बहुजन कहा गया।[29] पार्टी ने जाति, वर्ग, धर्म केमतभेद के साथ मुख्यधारा को पार्टियों से इन वर्गों की उदासीनता को आधारबनाया। कांशीराम की दृष्टि दो अवस्थाओं पर थी, जिसके माध्यम से दलितों,बहुजन समाज का समाज में रूपांतरण हो सकता था, पहला राजनीतिक शक्तिपर कब्जा करके जो कि ब्राह्मणों के खिलाफ ध्रुवीकरण से आयेगा जिनकी आबादीकेवल 10 से 12 प्रतिशत तक ही थी। उन्होंने दृढ़तापूर्वक प्रयास किया कि पिछड़ी और दलित जातियाँ अपने वोट की कीमत को जाने और व्यवस्था के भीतर हीकार्य करके शक्ति प्राप्त करें। आन्दोलन के बाद के चरण में क्रान्ति का प्रभाव समाज में ज्यादा व्यापक होगा और समाज को रूपान्तरित कर देगा। यद्यपि या कैसे होगा इसकी व्याख्या नहीं की गई। यहाँ जाति दुधारी तलवार बन गई। यह वर्तमान में उत्पीड़न का साधन थी, और अब इसका प्रयोग वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को समाप्त करने में किया जा रहा था। यह जाति का विचारधारात्मकपहलू था जहाँ जाति को विचार के रूप में प्रयोग किया जा रहा था।

बसपा ने गाँधीऔर कांग्रेस की आलोचना से अपनी शक्ति बढ़ायी।[30] बिना कांग्रेस की आलोचना के पार्टी दलितों को न तो लामबंद कर सकती थीऔर न ही उनका असली प्रतिनिधि होने का दावा कर सकती थी। कांग्रेस केदलित नेताओं को उनका चमचा कहा गया। पार्टी ने कांग्रेस की आलोचना करके बहुजन को लामबंद करने की कोशिश किया। कांग्रेस के प्रदेश और केन्द्र केशासन की आलोचना की गई क्योंकि पार्टी अपने शासनकाल में दलित उत्पीड़न रोकने, जाति भेदभाव रोकने, दलितों को लाभ पहुँचाने वाली नीतियों के गलत क्रियान्वयन के लिये जिम्मेदार थी। इसके कारण आजादी के बाद दलितों काविकास नहीं हो पा रहा था। एक ओर सामान्य कानून अधिनियम 1955 प्रभावकारीतरीके से प्रयोग नहीं हो रहा था, दूसरी और आर्थिक मापदंडो, जो कि गरीबीरेखा से ऊपर उठाने में सहायक हो सकते थे जैसे भूमि सुधार को क्रियान्वित नहीं किया गया।

बसपा अम्बेडकर के दर्शन, दलित मुक्ति और सविधान में सुरक्षितविचारों में कोई अन्तर नहीं देखती थी। पार्टी का विश्वास था कि समाजवाद भारतीय समाज को रूपान्तरित कर सकता है। मुख्य बाधा जाति, भाषा की शुद्धता, धर्म, प्रजाति, प्रथायें थी जो श्रमिकों को आपस में बाँटती थीं। बसपा की एक मुख्य विचारधारा अम्बेडकर से प्रेरित थीं शिक्षित हो,आन्दोलित हो और संगठित हो।[31] बसपा ने अपनी स्थापना कें तुरन्त बाद चुनावी राजनीति ने भाग लिया और राज्य में अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया और शीघ्र ही राष्ट्रीय स्तर पर विस्तृत होने लगी। प्रारम्भिक चरण ने 1985–1989 में पार्टी ने कोई सीट नहीं जीती, लेकिन लेकिन इसने अनुसूचित जाति के सरकारी कर्मचारियो के बीच आधार बना लिया।

इसने इस चरण में चुनावी और प्रदर्शन की राजनीति को बराबर का महत्व दिया, जिसनेबाद में चरणो ने इसे फायदा पहुँचाया।

उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन का विशेष चरित्र था जिसने इसे अन्य क्षेत्रों के अम्बेडकरवादी आन्दोलनों के अलग कर दिया विशेषरू महाराष्ट्रा के आन्दोलन से, यह पश्चिम और दक्षिण भारत की अपेक्षा देर से विकसित हुआ और साम्राज्यवादी काल में यह कमजोर था, और देश के केवल कुछ हिस्सों में फैला था। उपनिवेश वादी संघर्ष के दौरान जाति विरोधी आन्दोलनों का अभाव और गाँधीवादी उदारवाद के कारण अनुसूचित जातियों ने हरिजन के रूप में पहचान प्राप्त किया। प्रारम्भिक परिवर्तन के प्रयास कंवल संस्कृतीकरण तक सीमित थे, और अनुसूचित जातियाँ राजनीतिक रूप से पिछड़ी रहीं। 1940 के दशक में अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित होकर राज्य के एक छोटे हिस्से में एक छोटे समूह ने पहले की प्रस्थिति और पहचान को अस्वीकार कर दिया और राजनीति का प्रयोग भारतीय राजनीति में समान्य स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रयोग करने लगे। आजादी के बाद के काल में 1960 के दशक में छोटे से काल को छोड़कर 1980 में उग्रपन्थी जाति जागरूकता का उदय हुआ। बसपा के उदय के

साथ दलितों को एक नई पहचान और जागरूकता प्राप्त हुई उत्तर प्रदेश के दलित आन्दोलन में गहराई, परिपक्वता और स्पष्ट चरित्र का अभाव था।

उत्तर प्रदेश में आजादी के बाद दलितों का उदय आकार में और गहराई में बड़ा आन्दोलन नहीं था। यह शक्ति और कमजोरी के कई चरणों से गुजरा। स्वायत्तता और सहयोग में इसे मिश्रित चरित्र का बना दिया। रिपब्लिकन पार्टी और बसपा दोनों के साथ एक केन्द्रीय समस्या थी कि दोनो पार्टियाँ अपने लक्ष्य और उसे प्राप्त करने के तरीके दोनों को लेकर अस्पष्ट थीं। बसपा जो कि एक आन्दोलन और एक राजनीतिक पार्टी दोनों थी ने राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने के अपने कम समय के लक्ष्य और सामाजिक रूपान्तरण के अपने लम्बे समय के लक्ष्य के बीच एक विरोधाभास पैदा कर दिया, जिसने इसे कमजोर कर दिया एक आन्दोलन के रूप में इसका लक्ष्य था जाति व्यवस्था को तोड़ना और उच्च जातियों और उनका प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टियाँ दोनों को शत्रु के रूप में पहचान करना अभी तक यह वर्तमान जाति व्यवस्था और इसके समानान्तर आर्थिक पदानुक्रम में क्रान्तिकारी रूपान्तरण नहीं कर सकी। एक पार्टी के रूप में इस लोकतान्त्रिक परिवर्तन का संसदीय रास्ता अपनाया। इसमें व्यवस्था में कार्य करके ही उसमे परिवर्तन लाने की उम्मीद किया।

इसके परिणामतः राजनीतिक शक्ति पर कब्जा करना काफी महत्वपूर्ण बन गया। यद्यपि अनुसूचित जातियाँ उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या का 20 प्रतिशत के आस––पास ही है।[32] लेकिन जाति आधारित ध्रुवीकरण के तर्क के कारण इसे अन्य जातियों का सहयोग मिला और राजनीतिक समझौते में इसे शक्ति प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध कराया। जाति का वर्ग के रूप में प्रयोग, विचारधारा के रूप में प्रयोग और अनुसूचित जातियों को ध्रुवीकरण के माध्यम के रूप ने प्रयोग ने बसपा को संसदीय माध्यमों से सत्ता पर कब्जा करने के योग्य बनाया। इस पूरी प्रक्रिया से नागरिक समाज का लोकतान्त्रिकरण हुआ। दलित आन्दोलन को एक वर्गीय आलोक में देखा जा सकता है न कि जातीय परिप्रेक्ष्य ने। इस ध्रुवीकरण ने सामाजिक रूप से सशक्त जातियों के राजनीतिक और सामाजिक आधिपत्य को समाप्त कर दिया। यह दलित आन्दोलन वामपंथियों के दोनो आन्दोलनों से अलग था क्योंकि इसमें आर्थिक उत्थान और समानता को एक लक्ष्य माना और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जाति को साधन के रूप में प्रयोग किया। ऊँची जातियों के हाथ का खिलौना बनी दलित जातियाँ राजनीतिक ध्रुवीकरण के माध्यम से सशक्त हो गयीं। बसपा का उददेश्य या राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करके लाभो का बँटवारा करना, जातीय भेदभाव समाप्त करना न कि संघर्ष के द्वारा राज्य सरचना के आर्थिक ढाँचे को बदलना।[32] यह मुक्ति और सशक्तिकरण का आन्दोलन था जो पिछडे और दलित वर्ग से सम्बन्धित था। बसपा अपने मातृसंगठन बामसेफ और मध्यमवर्ग के समर्थन के द्वारा दलित आन्दोलन को देश भर ने फैलाने ने प्रयासरत रही । 1990 के दशक में दलितों की राजनैतिक शक्ति उभार पर आ गयी और दलित जातियों के राजनैतिक चेतना का क्रम पूर्ण हो गया और दलित जातियॉ राजनैतिक सत्ता के संचालन में महत्वपूर्ण शक्ति बन गयीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. माता प्रसाद – हिन्दी साहित्य में दलित काव्यधारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. भारत सरकार अधिनियम – 1935
3. इण्डिया टुडे – ब्रेकिंग द बैरियर 30 अप्रैल 1997
4. अभय कुमार दूबे – कांशीराम एक आलोचनात्मक अध्ययन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
5. घनश्यामशाह –दलित पालीटिक्स राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
6. घनश्याम शाह – दलित पॉलीटिक्स राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
7. सुमित सरकार – आधुनिक भारत राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
8. सुधा पई – कान्सेप्ट ऑफ सोशल जस्टिस 1998
9. पाल ब्रास – कास्ट फैक्शन एण्ड पार्टी इन उत्तर प्रदेश।
10. आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन आर0 चन्दा, कन्हैयालाल, चंचरीक ।
11. घनश्याम शाह – दलित पॉलीटिक्स राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
12. सुधा पई –कॉन्सेप्ट ऑफ सोशल जस्टिस 1998

13. उत्तर प्रदेश चुनाव संकलन विधानसभा प्रकाशन, लखनऊ ।
14. उत्तर प्रदेश चुनाव संकलन विधानसभा प्रकाशन, लखनऊ ।
15. उत्तर प्रदेश चुनाव संकलन विधानसभा प्रकाशन, लखनऊ ।
16. उत्तर प्रदेश चुनाव संकलन विधानसभा प्रकाशन, लखनऊ।
17. घनश्याम शाह –दलित पॉलीटिक्स राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
18. घनश्याम शाह – दलित पॉलीटिक्स राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
19. अभय कुमार दूबे – कांशीराम एक आलोचनात्मक अध्ययन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
20. घनश्याम शाह – दलित पॉलीटिक्स राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
21. अभय कुमार दूबे – कांशीराम एक आलोचनात्मक अध्ययन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
22. पाल ब्रास – कास्ट फैक्शन एण्ड पार्टी इन उत्तर प्रदेश ।
23. आम्बेथ राजन – भाई बहुजन समाज पार्टी। A.B.C.D.E प्रकाशन, नई दिल्ली 1996
24. घनश्याम शाह – दलित पॉलीटिक्स राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
25. आम्बेथ राजन – भाई बहुजन समाज पार्टी। A.B.C.D.E प्रकाशन, नई दिल्ली 1996
26. आम्बेथ राजन – भाई बहुजन समाज पार्टी। A.B.C.D.E प्रकाशन, नइं दिल्ली 1996
27. रजनी कोठारी – राइज ऑफ दलित्स एण्ड रिन्यूड डिवेड ऑन कास्ट
28. रजनी कोठारी – राइज ऑफ दलित्स एण्ड रिन्यूड डिवेड ऑन कास्ट
29. अभय खुमार दूबे – कांशीराम एक आलोचनात्मक अध्ययन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
30. गेल आम्बेड्ट – दलित वीजन्स आरिएंट लांगमेन, नई दिल्ली 1996
31. अमरेश मिश्र – दलित एग्नशन EPW, 11 Dec, 1993
32. भारत की जनगणना, 1991
33. योगेन्द्र यादव, पॉलीटिकल चेन्ज इन नार्थ इण्डिया ईपीडक्यू 1993

Copyright ©2014, Dr.Susheel Pandey**.** *This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.*